सद्धम्म मणिरतन

भगवान बुद्ध

सम्पादक- पूज्य रस्स धम्मिक थेर
अनुवादक- पूज्य के. चन्दरतन नायक थेर

सद्धम्म मणिरतन

(Gemstones of the Good Dhamma)

पालि साहित्य से चुने गये पद्य संग्रह
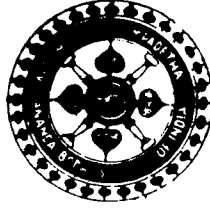
सम्पादक – पूज्य एस० धम्मिक थेर ।

अनुवादक – पूज्य कें० चन्दरतन नायक थेर ।

प्रकाशक - आनन्द बोधि प्रकाशन

श्री लंकारामय ।

श्रावस्ती ।

प्रथम संस्करण

१६८६

पुस्तक का प्राप्त स्थान:—

नव जेतवन महा विहार एवं
श्री लंकारामय
श्रावस्ती
बहराइच (उ. प्र.)

नं० १७, मारुति पुरम्
फैजाबाद रोड़
लखनऊ

Printed for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
Mobile Web: m.budaedu.org

Printed in Taiwan

प्राक्कथन

भगवान बुद्ध के उपदेशों और उनके प्रत्यक्ष अनुभवों को मुख्यतः सुत्तपिटक में संगृहीत किया गया है। इस महत्त्वपूर्ण संग्रह में बुद्ध के धर्म और दर्शन् गद्य और पद्य में उपलब्ध हैं। साधारण बौद्ध इससे उतने परिचित नहीं हैं। धम्मपद सुत्तपिठक की चुनी हुई गाथाओं का संग्रह है, जो बुद्ध की अत्यन्त लोकप्रिय शिक्षाओं के विभिन्न पहलुओं को प्रकट करते हैं। इसी प्रकार सुत्तपिटक के अन्य महत्त्वपूर्ण ऐसे उपदेशात्मक पद्य पाये जाते हैं। मैंने उन्हें एकत्र कर एक उपयोगी ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करना उचित समझा। इनमें से अधिकाँश उपदेश स्वयं भगवान् बुद्ध के द्वारा दिये गये हैं और कुछ महत्त्वपूर्ण गाथायें श्रावक भाषित हैं जिन्हें विषय के अनुसार वर्गों में विभाजित किया गया है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि इस छोटी-सी पुस्तक से लोग अवश्य लाभान्वित होंगे।

यह छोटा सा कार्य मेरी प्रिय मित्र कु० कान्स्टन्स सन्धम् को सादर समर्पित है। मेरी कामना है कि यह 'सद्धम्म मञ्जिरतन' प्रत्येक पाठक का पथ-प्रदर्शन करे और उसकी परम शान्ति का साधक बने।

एस० धम्मिक

"दो शब्द"

इस ग्रन्थ के सम्पादक आदरणीय पूज्य एस० धम्मिक जी का जन्म आस्ट्रेलिया में हुआ और छोटी आयु में ही उनकी रूचि बौद्ध धर्म की तरफ आकर्षित हुई। बाइस वर्ष की आयु में वे भारत आये और श्रावस्ती के श्री लंकारामाधिपति स्वर्गीय पूज्य एम्० संघरतन नायक महास्थविर के पास प्रव्रज्या ली। बाद में वे श्री लंका गये जहाँ केन्डी में कई वर्षों तक साधना और शिक्षा प्राप्त की। सम्प्रति वे सिंगप्पूर में रहते हुए बौद्ध धर्म और साधना सिखाते हैं।

पूज्य धम्मिक जी पिछले वर्ष श्रावस्ती के नव जेतवन महा विहार के उदघाटन समारोह में भाग लेने के लिए पुनः भारत आये थे। श्रावस्ती में उन्होंने 'Gemstones of the Good Dhamma' का एक प्रति मुझे भेंट दिया और कहा– यदि आप इसका हिन्दी अनुवाद कर दें तो मैं इसको प्रकाशित कर इससे जो भी कुछ आय होगी उसे मेरे गुरू जी द्वारा निर्मित नव जेतवन महा विहार को अर्पित कर दूंगा। मैने किताब को सरसरी नजर से देखा और मुझे लगा कि यह अपने नाम के अनुरूप सद्धर्म मणिरत्न ही है। मैंने सहर्श अपनी स्वीकृति देदी। एक महीने के भीतर मैंने उस ग्रन्थ को हिन्दी में अनूदित करने का साहस किया।

मैं अहिन्दी भाषा भाषी हूं, इसलिए इसके अनुवाद में कहीं-कहीं त्रुटियां हो सकती हैं जिसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूं। अनुवाद और प्रूफ देखते समय पूज्य जे० ज्ञानरतन जी का सहयोग प्रशंसनीय है। ग्रन्थ को सुचारु रूप से मुद्रित करने का श्रेय श्री ज्ञान प्रिन्टर्स को है।

३०-५-८६ | के० चन्दरतन

विषय–सूची

१. आयाचना।

१. **नमो ते पुरिसाजञ्ञा नमो ते पुरिसुत्तम।**
सदेवकस्मिं लोकस्मिं नत्थि ते पटिपुग्गलो ॥

हे श्रेष्ठ पुरुष ! आपको मेरा नमस्कार है, हे उत्तम पुरुष ! आपको मेरा नमस्कार है, देवता और मनुष्य सहित सारे संसार में आपके समान कोई नहीं है।

२. **नमो ते बुद्धवीरत्थु विप्पमुत्तोसि सब्बधि।**
सम्बाधपटिपन्नोस्मि तस्स मे सरणं भव ॥

महावीर बुद्ध ! आपको नमस्कार हैं, आप सभी प्रकार से विमुक्त हैं, मैं भारी विपत्ति में आ पड़ा हूँ, सो मुझे आप अपनी शरण दें।

३. **पस्सामहं देव मनुस्स लोके अकिंचनं ब्राह्मणं इरियमानं।**
तं तं नमस्सामि समन्तचक्खु पमुञ्च मं सक्क कथङ्कथाहि ॥

मैं देव और मनुष्य लोक में आप अकिंचन ब्राह्मण को विचरण करते हुए देखता हूँ। हे समन्तचक्षु ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे शक्र ! मुझें संशयों से मुक्त करें।

४. **अनुसास ब्रह्मे करुणायमानो विवेकधम्मं यमहं विजानं।**
यथाहं आकासोव अब्यापज्जमानो इधे व सन्तो असितो चरेय्यं ॥

हे ब्रम्हा: करुणा करते हुए मुझे उपदेश दें जिससे कि मैं विवेकी धर्म को जान लूँ और आकाश के समान निर्मल हो यहीं शान्त हो, अनासक्त हो विचरण करूँ।

५. येच सङ्खत धम्मासे ये च सेखा पुथू इध ।
तेसं मे निपको इरियं पुट्ठो पब्रूहि मारिस ।।

जो सभी बातों को जान गये हैं और जो यहाँ शैक्ष्य और दूसरे लोग हैं, मार्ष ! पूछने पर ज्ञानी आप उनकी चर्या को बतायें ।

२. धम्म वग्ग ।

६. कित्तयिस्सामि ते धम्मं दिट्ठे धम्मे अनीतिहं ।
तं विदित्वा सतो चरं तरे लोके विसत्तिकं ।।

मैं तुम्हें उस धर्म को बताऊँगा, जिसे इसी जन्म में स्वयं साक्षात्कार कर, स्मृतिमान हो विचरण करते हुए संसार में तृष्णा को पार कर जाता है ।

७. सुविजानो भवं होति सुविजानो पराभवो ।
धम्मकामो भवं होति धम्मदेस्सी पराभवो ।।

उन्नतिगामी पुरुष आसानी से जाना जा सकता है, ऐसे ही अवनतिगामी पुरुष भी आसानी से जाना जा सकता है, धर्म कामी की उन्नति होती है और धर्म द्वेषी की अवनति ।

८. यो च धम्मं अभिञ्ञाय धम्मं अञ्ञाय पण्डितो ।
रहदो व निवातो च अनेजो वूपसम्मति ।।

जो बुद्धिमान धर्म का ज्ञान, प्राप्त कर, धर्म को जान निर्मल जलाशय के समान, पीड़ा रहित, तृष्णा रहित शान्त हो जाता है ।

९. येसं धम्मा असम्मुत्ता परवादेसु न नीयरे ।
ते सम्बुद्धा सम्मदञ्ञा चरन्ति विसमे समं ।।

जो धर्मों के विषय में मूढ़ नहीं है, जैसे तैसे के मत में पड़ कर नहीं बहक गये । वे सम्बुद्ध है, सब कुछ जानते हैं, विषम, स्थान में भी उनका आचरण सम रहता है ।

१०. न उदकेन सुची होति बह्वेत्थ न्हायती जनो।
यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो॥

स्नान तो सभी लोग करते हैं किन्तु पानी से कोई शुद्धि नहीं होता।। जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुद्धि है वही ब्राह्मण है।

११. उजुको नाम सो मग्गो अभया नाम सा दिसा।
रथो अकूजनो नाम धम्मचक्केहि संयुतो॥

वह मार्ग बड़ा सीधा है, वह स्थान डर भय से शून्य है, कुछ भी आवाज न निकालने वाला रथ है, जिसमें धर्म के चक्के लगे हैं।

१२. हिरी तस्स अपालम्भो सत्यस्स परिवारणं।
धम्मा'हं सारथिं ब्रूमि सम्मादिट्ठि पुरेजवं॥

लज्जा उसकी बचाव है, स्मृति उस पर बिछी चादर है, धर्म को मैं सारथी बताता हूं। सम्यक् दृष्टि आगे दौड़ने वाला सवार है।

१३ः यस्स एतादिसं यानं इत्थिया पुरिसस्स वा।
स वे एतेन यानेन निब्बानस्सेव सन्तिके॥

जिस स्त्री या पुरुष के पास इस प्रकार कीं सवारी है, वह उस पर चढ़कर निर्वाण तक पहुंच जाता है।

१४. ये केचि ओसधा लोके विज्जन्ति विविधा बहु।
धम्मोसध समं नत्थि एतं पिवथ भिक्खवो॥

जो अनेक प्रकार के दवाइयाँ संसार में विद्यमान है, फिर भी धर्म रूपी औषधी के समान अन्य कोई नहीं है, भिक्षुओं इसे पिओ।

१५ः धम्मोसधं पिबित्वान अजरामरणा सियुं।
भावयित्वा च पस्सित्वा निब्बुता उपधिक्खये॥

धर्म रूपी औषधी को पीकर अजर-अमर हो जाओ। भावना कर, परम ज्ञान प्राप्त करके सभी उपधियों को मिटाकर निर्वाण प्राप्त कर लो।

३. किलेस वग्ग ।

१६. कामयोगेन संयुत्ता भवयोगेन चूभयं ।
दिट्ठियोगेन संयुत्ता अविज्जाय पुरक्खता ।
सत्ता गच्छन्ति संसारं जाति मरण गामिणो ।।

जाति-मरण को प्राप्त होने वाले प्राणी, कामयोग, भवयोग तथा दिट्ठियोग से संयुक्त होकर अविद्या को आगे करके आवागमन के चक्कर में पड़ते हैं ।

१७. न हिरञ्ञा सुवण्णेन परिक्खीयन्ति आसवा ।
अमित्ता वदका कामा सपत्ता सल्लबन्धना ।।

हिरण्य सुवर्ण से आश्रव (क्लेश) क्षीण नहीं होता । काम बड़े शत्रु है, वधक है, विरोधी है, शूल है, बन्धन है ।

१८. उम्मादना उल्लपना कामा चित्तप्पमद्दिनो ।
सत्तानं सङ्किलेसाय खिप्पं मारेन ओड्डितं ।।

काम तृष्णा से उन्माद तथा आत्म प्रशंसा होती है और चित्त का मथन होती है । यही प्राणियों के क्लेश के लिए होता है और शीघ्र मार के पाश में फँस जाता है ।

१९. पब्बतस्स सुवण्णस्स जातरूपस्स केवलो ।
द्वित्ता वा नालमेकस्स इति विद्वा समं चरे ।।

शुद्ध असली सोने के पर्वत का दुगुना भी एक पुरुष के लिए काफी नहीं है, यह समझकर सम आचरण करें ।

२०. कोधनो दुब्बण्णो होति अथो दुक्खम्पि सेति तो ।
अथो अत्थं गहेत्वान अनत्थं अधिपज्जति ।।

जो क्रोधी होता है, वह दुर्वर्ण होता है, वह दुःख से सोता है, वह अर्थ को भी अनर्थ करके ग्रहण करता है ।

२१. हन्ता लभति हन्तारं जेतारं लभती जयं।
अक्कोसको च अक्कोसं रोसेतारञ्च रोसको।
अथ कम्म विवट्टेन सो विलुत्तो विलुम्पति ॥

मारने वाले को मारने वाला मिलता है, जीतने वाले को जीतने वाला मिलता है, गाली देने वाले को गाली देने वाला मिलता है, और बिगड़ने वाले को बिगड़ने वाला, इस तरह अपने किये कर्म के फेर में पड़, लूटने वाला लूटा जाता है।

२२. नत्थञ्ञो एक धम्मोपि येनेव निवुता पजा।
संसरन्ति अहोरत्तं यथा मोहेन आवुता ॥

दूसरा एक भी धर्म ऐसा नहीं है जिससे कि ढके हुए प्राणी दिन-रात चक्कर काटते हैं, जैसे कि मोह से ढँके हुए।

२३. इमेसु किर सज्जन्ति एके समणब्राह्मणा।
विग्गय्ह नामं विवदन्ति जना एकङ्गदस्सिनो ॥

कितने श्रमण और ब्राह्मण इसी में जूझे रहते हैं, बिना अज्ञान का नाश किये बीच ही में नष्ट हो जाते हैं।

२४. ये च रत्तिं दिवा युत्ता सम्मासम्बुद्ध सासने।
ते निब्बापेन्ति रागग्गिं निच्चं असुभसञ्ञिणो ॥

जो रात-दिन सम्यक् सम्बुद्ध के शासन में लगे रहते हैं अशुभ सज्ञा वाले होकर रागाग्नि को बुझा देते हैं।

२५. दोसग्गिं पन मेत्ताय निब्बापेन्ति नरुत्तमा।
मोहग्गिं पन पञ्ञाय यायं निब्बेधगामिनी ॥

उत्तम पुरुष द्वेषाग्नि को मैत्री से बुझा देते हैं, और मोहाग्नि को प्रज्ञा से जो कि निर्वाण की ओर ले जाने वाली है।

४. दान वग्ग

२६. न समणे न ब्राह्मणे न कपणद्धिकवणिब्बके।
लद्धान संविभाजेति अन्नं पानं च भोजनं।
तं वे अवुट्ठिक समोति आहु नं पुरिसाधमं ॥

जो श्रमण, ब्राह्मण, निर्धन, पथिक और याचकों को पाकर अन्न, पान और भोजन नहीं बाँटता है, वह अवृष्टि सम है, उसे अधम पुरुष कहते हैं।

२७. एकच्चानं न ददाति एकच्चानं पवेच्छति।
तं वे पदेसवस्सीति आहु मेधाविनो जना ॥

जो किसी को नहीं देता है, और किसी को देता है, वह प्रदेश वर्षी है– ऐसा मेधावी लोग कहते हैं।

२८. सुभिक्खवाचो पुरिसो सब्बभूतानुकम्पको।
आमोदमानो पकिरेति देथ देथा'ति भासति ॥

जो पुरुष भिक्षा देने की वाणी बोलने वाला होता है, सब प्राणियों पर अनुकम्पा करने वाला होता है, प्रसन्न मन से बिखेरता है, देदो-देदो कहता है।

२९. यथापि मेघो तनयित्वा गज्जयित्वा पवस्सति।
थलं निन्नं च पूरेति अभिसन्दन्तो' व वारिना ॥

जैसे बादल गड़गड़ाते और गर्जते हुए बरसाता है, तथा पानी बहाकर ऊँची नीची भूमि को भर देता है।

३०. एवमेव इधेकच्चो पुग्गलो होति तादिसा ।
धम्मेन संहरित्वान उट्ठानाधिगतं धनं ।
तप्पेति अन्नपानेन सम्मा पत्ते वनिब्बके ।।

इसी प्रकार यहाँ कोई व्यक्ति होता है, धार्मिक परिश्रम से प्राप्त धन को जुटाकर भिखारियों को भली प्रकार अन्न और पान से तृप्त करता है ।

३१. यथापि कुम्भो सम्पुण्णो यस्स कस्सचि अधोकतो ।
वमते उदकं निस्सेसं न तत्थ परिरक्खति ।।

जिस प्रकार पानी का भरा हुआ घड़ा उलटा करने पर सारे पानी को गिरा देता है, कुछ भी बचा नहीं रखता ।

३२. तथेव याचके दिस्वा हिनमुक्कट्ठमज्झिमे ।
ददाहि दानं निस्सेसं कुम्भोविय अधोकतो ।।

उसी प्रकार तुम उत्तन, मध्यम और अधम सभी प्रकार के याचकों को पा उलटे घड़े की तरह अपने सर्वस्व का दान कर दें ।

३३. दानंच पेय्यवज्जं च अत्थचरिया च या इध ।
समानत्तता च धम्मेसु तत्थ तत्थ यथारहं ।
एते खो सङ्गहा लोके रथस्साणीव यायतो ।।

दान, प्रियवचन, उपकार और जहां तहां यथायोग्य समता का बर्ताव ये लोक में चार संग्रह वस्तुयें हैं, वैसे ही जैसे चलते हुए रथ की आणी।

३४. अन्नदो बलदो होति वत्थदो होति वण्णदो ।।
यानदो सुखदो होति दीपदो होति चक्खुदो ।।

अन्न देने वाला बल देता है, वस्त्र देने वाला वर्ण देता है, वाहन देने वाला सुख देता है, प्रदीप देने वाला आंख देता है ।

३५. **सो च सब्बददो होति यो ददाति उपस्सयं ।**
अमतं ददो च सो होति यो धम्ममनुसासति ॥

जो आश्रय देता है वह सब कुछ देने वाला है, और अमृत देने वाला तो वह होता है जो धर्म का उपदेश देता है ।

५. सील वग्ग ।

३६. **सील मे विध सिक्खेथ अस्मिं लोके सुरक्खितं ।**
सीलं हि सब्बसम्पत्तिं उपनामेति सेवितं ॥

इस संसार में अच्छी तरह शील की शिक्षा ही ग्रहण करनी चाहिए । सेवित शील सभी सम्पत्ति दे देता है ।

३७. **यो पाणं नातिपातेति मुसावादं न भासति ।**
लोके आदिन्नं नादियति परदारं न गच्छति ॥

जो प्राणी हिंसा नहीं करता, झूठ नहीं बोलता चोरी नहीं करता, परस्त्री गमन नहीं करता ।

३८. **सुरामेरय पानञ्च यो नरो नानुयुञ्जति ।**
पहाय पञ्च वेरानि सीलवा इति वुच्चति ॥

सुरा मेरय आदि नशीली चीजें ग्रहण नहीं करता है—जो इन पांच अहितकर बातों से विरत रहता है, वह सुशील कहलाता है ।

३९. **आदि सीलं पतिट्ठा च कल्याणानञ्च मातुकं ।**
पमुखं सब्बधम्मानं तस्मा सीलं विसोधये ॥

शील कल्याण गुणों की आदि है, प्रतिष्ठा है, माता और सभी धर्मों का प्रमुख है । इसलिए शील को विशुद्ध करें ।

४०. सीलं बलं अप्पटिमं सीलं आवुधमुत्तमं ।
सीलं आभरणं सेट्ठं सीलं कवचमब्भुतं ।।

शील अनुपम बल है, शील उत्तम शस्त्र है, शील श्रेष्ठ आभरण है और अद्भुत कवच है ।

४१. न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
कम्मना वसलो होति कम्मना होति ब्राह्मणो ।।

कोई जन्म से वृषल नहीं होता और जन्म से ब्राह्मण भी नहीं होता है । अपने कर्म से कोई वृषल होता है, कर्म से ही ब्राह्मण भी होता है ।

४२. अनङ्गणस्स पोसस्स निच्चं सुचिगवेसिनो ।
वालग्गमत्तं पापस्स अब्भामत्तं व खायति ।।

आसक्ति रहित, नित्य पवित्रता की खोज में रहने वाले पुरुष को बाल का सिरा जितना पाप भी बादल की तरह विशाल मालूम देता है ।

४३. पुञ्ञं एव सो सिक्खेय्य अयातग्गं सुखुन्द्रयं ।
दानञ्च समचरियञ्च मेत्त चित्तं च भावये ।।

उत्तम,सुख दायक पुण्य को प्राप्त करे । दान दे, सम आचरण करे और मैत्री चित्त को बढ़ाये ।

४४. सीलं अजरसा साधु सद्धा साधु अधिट्ठिता ।
पञ्ञा नरानं रतनं पुञ्ञं चोरेय्हहारियं ।।

शील बुढ़ापा नहीं आने से भी ठीक है, अधिष्ठित श्रद्धा बहुत ठीक है, प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है, पुण्य चारों ओर से नहीं पुकारा जा सकता ।

४५. सब्बदा सीलसम्पन्नो पञ्ञावा सुसमाहितो ।
अज्झत्त चिन्ती सतिमा ओघं तरति दुत्तरं ॥

सदा शील से युक्त, प्रज्ञावान, एकाग्रचित्त, अध्यात्म चिन्तन में लीन, स्मृतिमान् दुस्तर बाढ़ को पार कर जाता है ।

६. वाचा वग्ग।

४६. पुरिसस्सहि जातस्स कुठारी जायते मुखे ।
याय छिन्दति अत्तानं बालो दुब्भासितं भणं ॥

जन्म से ही पुरुष के मुख में कुठारी उत्पन्न होती है, मूर्ख बुरी बात बोलता हुआ उससे अपने को ही काट डालता है ।

४७. तमेव वाचं भासेय्य यायत्तानं न तापये ।
परे च न विहिंसेय्य सा वे वाचा सुभासिता ॥

उसी बात को बोलें जिससे न स्वयं कष्ट पायें और न दूसरों को भी दुःख हो । वही बात सुभाषित है ।

४८. पियवाचमेव भासेय्य या वाचा पटिनन्दति ।
यं अनादाय पापानि परेसं भासते पियं ॥

जो बात आनन्दमयी हो उसी प्रिय बात को बोले । पापी बातों को छोड़कर दूसरों को प्रिय वचन ही बोले ।

४९. तस्सेव तेन पापियो यो कुद्धं पटिकुज्झति ।
कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो सङ्गामं जेति दुज्जयं ॥

उससे उसी की बुराई होती है, जो बदले पर क्रोध करता है, क्रोधी के प्रति क्रोध न करने वाला, अजेय संग्राम जीत लेता है ।

५०. जयं वे मञ्ञती बालो वाचाय फरुसं भणं ।
जयं चे वस्स तं होति या तितिक्खा विजानतो ॥

मूर्ख मुँह से कठोर बातें कहते हुए, अपनी जीत समझ लेता है, जीत तो उसी की होती है, जो ज्ञानी चुपचाप सह लेता है ।

५१. यं समणो बहु भासति उपेतं अत्थसंहितं ।
जानं सो धम्मं देसेति जानं सो बहु भासति ॥

जो श्रमण अर्थयुक्त बहुत बात बोलता है, वह जानते हुए धर्म का उपदेश देता है और जानते हुए बहुत बोलता है ।

५२. यो वे न ब्याधति पत्वा परिसं उग्ग वादिनिं ।
न च हापेति वचनं न च छादेति सासनं ॥

जो उग्रवादियों के परिषद में पहुँच कर भी घबराता नहीं है, जो वचन को छोड़ता नही है और जो संदेश को ढकता नहीं है ।

५३. असन्दिद्धं च भणति पुच्छितो न च कुप्पति ।
स वे तादिसको भिक्खु दूतेय्यं गन्तुमरहति ॥

जो असन्दिग्ध रूप से बोलता है, तथा जो कोई बात पूछे जाने पर क्रोधित नहीं होता-वैसा भिक्षु ही दूत बनाकर भेजे जाने के योग्य होता है ।

५४. न भासमानं जानन्ति मिस्सं बालेहि पण्डितं ।
भासमानञ्च जानन्ति देसेन्तं अमतं पदं ॥

जब तक बोलता नहीं है, तब तक मूर्खों में मिले पण्डित की पृथक पहचान नही होती, जब बोलता है, अमृत वाणीका उपदेश करता है, तभी पहचाना जाता है ।

५५. यं बुद्धो भासती वाचं खेमं निब्बान पत्तिया ।
दुक्खस्सन्त किरियाय सा वे वाचानमुत्तमा ।

बुद्ध जो कल्याणकर निर्वाण की प्राप्ति और दुःख का अन्त करने के लिए जो वचन बोलते हैं, वही वचनों में उत्तम है ।

७. भोग वग्ग ।

५६. जीवते वापि सप्पञ्ञो अपि वित्तपरिक्खया ।
पञ्ञाय च अलाभेन वित्तवा पि न जीवति ।।

धन हीन होने पर भी प्रज्ञावान यथार्थ में जीता है । धनवान होने पर भी अज्ञानी यथार्थ में नहीं जीता ।

५७. अप्पकेनपि मेधावी पाभतेन विचक्खनो ।
समुट्ठापेति अत्तानं अनुं अग्गीव सन्धमन्ति ।।

विचक्षणशील बुद्धिमान मनुष्य अल्पमात्र सामग्री से अपने को ऐसा उन्नत कर लेता है जैसे चिनगारी को फूंककर महान आग को बना लेता है ।

५८. सुसंविहित कम्मन्तं कालुट्ठायं अतन्दितं ।
सब्बे भोगाभिवड्ढन्ति गावो सौसभामिव ।।

जो संयमी, समय से उठने वाला और तन्द्रा रहित है, उसके सभी भोग उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं जैसे वृषभ सहित गौवें ।

५९. भोगे संहरमानस्स भमरस्सेव इरीयतो ।
भोगा सन्निचयं यन्ति वम्मिकोवुपचीयति ।।

भोगों को संचय करने वाले भ्रमर की तरह होता है और उसके भोग सम्पत्ति वैसे बढ़ते हैं जैसे वल्मीक बढ़ता है ।

६० एकेन भोगे भुञ्जेय्य द्वीहि कम्मं पयोजये ।
चतुत्थं च निधापेय्य आपदासु भविस्सति ।।

एक भाग को स्वयं भोगें, दो भागों को काम में लगावें, चौथे भाग को आपात काल में काम आने के लिए सुरक्षित रखें ।

६१. सुसंविहित कम्मन्ता सङ्गहितपरिज्जना ।
भत्तु मनापं चरति सम्भतं अनुरक्खति ।।

जो अपने कर्मान्त की सम्यक् व्यवस्थापिका होती है, जो परिजनों का संग्रह करने वाली होती है, जो पतिकी इच्छा के अनुकूल चलती है, जो कमाये हुए की रक्षा करती है ।

६२. सद्धा सीलेन सम्पन्ना वदञ्ञू वीतमच्छरा ।
निच्चं मग्गं विसोधेति सोत्थानं सम्परायिकं ।।

जो श्रद्धा युक्त होती है, जो सदाचारिणी होती है, जो प्रज्ञावान् होती है तथा जो त्यागशीली होती है, वह इस प्रकार नित्य परलोक पथ को शुद्ध करती है ।

६३. सद्धाधनं सीलधनं हिरि ओत्तप्पियं धनं ।
सुतधनञ्च चागो च पञ्ञामे सत्तमं धनं ।।

श्रद्धाधन, शील धन, लज्जा धन, पाप करने में भीरूता धन, श्रुत धन त्याग धन तथा सातवाँ धन है प्रज्ञा ।

६४. यस्स एते धना अत्थि इत्थिया पुरिसस्स वा ।
अदलिद्दोति तं आहु अमोघं तस्स जीवितं ।।

जिस स्त्री या पुरुष के पास ये धन हों, वह दरिद्र नहीं है । उसका जीवन सफल है ।

६५. पतिरूप कारी धुरवा उट्ठाता विन्दते धनं ।
सच्चेन कित्तिं पप्पोति ददं मित्तानि गन्थति ।।

उचित कार्य को करने वाला, धैर्यवान और परिश्रमी व्यक्ति धन पाता है। सत्य से यश प्राप्त होती है और देने वाला मित्रों को मिला कर रखता है।

८. मित्तता वग्ग ।

६६. असन्तस्स पिया होन्ति सन्ते न कुरुते पियं ।
असतं धम्मं रोचेति तं पराभवतो मुखं।।

जिसे दुर्जन प्रिय होते है, सज्जनों से प्रेम नहीं करता असत्पुरुषों के धर्म को पसन्द करता है, वह उसकी अवनति का कारण है।

६७. सब्भिरेव समासेथ सब्भिकुब्बेथ सन्थवं ।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय पञ्ञा लब्भति नाञ्ञातो ।।

सत्पुरुषों के साथ बैठें, सत्पुरुषों के साथ मिले जुलें, सन्तों के अच्छे धर्म जानने से ही प्रज्ञा प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं।

६८. पूतिमच्छं कुसग्गेन यो नरो उपनय्हति ।
कुसा पि पूति वायन्ति एवं बालूपसेवना ।।

जैसे सड़ी हुई मछली को जो कोई पुरुष कुश की नोक पर बाँधता है, तो कुश भी दुर्गन्ध बहाती है, ऐसा ही मूर्खों का साथ है।

६९. तगरञ्च पलासेन यो नरो उपनय्हति ।
पत्ता पि सुरभि वायन्ति एवं धीरूपसेवना ।।

जो कोई पुरुष पलास में तगर को बाँधता है, तो उसकी पत्तियाँ भी सुगन्ध बहाती है, ऐसा ही बुद्धिमान् का साथ है।

७०. **तस्मा पलासपुटस्से व ञत्वा सम्पाकमत्तनो ।**
असन्ते नूपसेवेय्य सन्ते सेवेय्य पण्डितो ॥

इसलिए पलास पत्तियों में बाँधने के समान अपने फल को जानकर बुद्धिमान दुर्जन का साथ न करें केवल सत्पुरुष का साथ करें ।

७१. **सत्थो पथवतो मित्तं माता मित्तं सके घरे ।**
सहायो अत्थजातस्स होति मित्तं पुनप्पुनं ।
सयं कतानि पुञ्ञानि तम्मित्तं सम्परायिकं ॥

हथियार राहगिर का मित्र है, माता अपने घर का मित्र है, सहायक काम आ पढ़ने पर बार बार मित्र होता है, अपने किये जो पुण्य कर्म है वे परलोक में मित्र होते हैं ।

७२. **उपकारोच यो मित्तो योच मित्तो सुखे दुखे ।**
अत्थक्खायी च यो मित्तो यो च मित्तानुकम्पको ॥

जो मित्र उपकारक होता है सुख दुःख में जो सखा रहता है जो मित्र हित वादी होता है और जो मित्र अनुकम्पक होता है ।

७३. **एते पि मित्ते चत्तारो इति विञ्ञाय पण्डितो ।**
सक्कच्चं पयिरुपासेय्य माता पुत्तं व ओरसं ॥

यही चार मित्रों को बुद्धिमान् ऐसा जानकर, भली प्रकार माता पिता और पुत्र की भाँति उनकी सेवा करें ।

७४. **कल्याणमित्तो यो भिक्खु सप्पतिस्सो सगारवो ।**
करं मित्तानवचनं सम्पजानो पतिस्सतो ।
पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसंयोजनक्खयं ॥

जो भिक्षु कल्याणमित्र वाला है, आज्ञाकारी, गौरवयुक्त, मित्रों की बात मानने वाला, संप्रज्ञ और स्मृति से युक्त होता है, वह क्रमशः सब बन्धनों को नाश कर देता है ।

७५. अब्भतीत सहायस्स अतीतगतसत्थुनो।
नत्थि एतादिसं मित्तं यथा कायगता सति ।।

सहायक के चले जाने पर, और शास्ता के चले जाने पर कायगता-स्मृति भावना जैसा कोई और मित्र नहीं है ।

९. सुत वग्ग ।

७६. सुस्सूसा सुतवद्धनी सुतं पञ्ञाय वद्धनं ।
पञ्ञाय अत्थं जानाति ञातो अत्थो सुखावहो ।।

सुनने से ज्ञान बढ़ता है, ज्ञान मे प्रज्ञा बढ़ती है, प्रज्ञा से मनुष्य सदर्थ को जान लेता है । जाना हुआ सदर्थ सुखकारी है ।

७७. बहुस्सुतं उपासेय्य सुतं च न विनासये ।
तं मूलं ब्रह्मचरियस्स तस्मा धम्मधरो सिया ।।

विद्वान की सेवा करें और विद्या की उपेक्षा न करें। वह ब्रह्मचर्य का मूल है । इसलिए धर्म-धर होवे ।

७८. बहुस्सुतं धम्मधरं सप्पञ्ञं बुद्धसावकं ।
नेक्खम्मं जम्बोनदस्सेव को तं निन्दितुमरहति ।
देवापि नं पसंसन्ति ब्रह्मुणापि पसंसितो ।।

जो बहूश्रुत है, जो धर्म धर है जो प्रज्ञावान् बुद्धश्रावक है जम्बोनद स्वर्ण के समान उसकी कौन निन्दा कर सकता है ? देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं, ब्रह्म द्वारा भी वह प्रशंषित है ।

७९. अप्पस्सुतो पि चे होति सीलेसु सुसमाहितो ।
सीलतो नं पसंसन्ति नास्स सम्पज्जते सुतं ।।

जो अल्पश्रुत है किन्तु शीलवान् हो तो उसके शील की प्रशंसा होती है, ज्ञान का तो उसमें अभाव ही रहता है ।

८०. बहुस्सुतो पि चे होति सीलेसु असमाहितो ।
सीलतो नं गरहन्ति तस्स सम्पज्जते सुतं ।।

जो बहुश्रुत हो ओर सदाचारी न हो तो उस की शीलकी दृष्टि से निन्दा होती है, ज्ञानी तो वह होता ही है ।

८१. बहुस्सुतो पि चे होति सीलेसु सुसमाहितो ।
उभयेन नं पसंसन्ति सीलतो च सुतेन च ।।

जो बहुश्रुत हो और सदाचारी भी हो, तो उनकी दोनों दृष्टियों से प्रशंसा होती है। शील की दृष्टि से तथा ज्ञान की दृष्टि से भी ।

८२. बहुस्सुतो अप्पस्सुतं यो सुतेनातिमञ्ञति ।
अन्धो पदीपधारो व तथेव पटिभातिमं ।।

जो विद्वान अपनी विद्या के कारण अविद्वान की अवज्ञा करता है, वह प्रदीप धारण किये हुए अन्धे की तरह मुझे प्रतीत होता है ।

८३. तस्माहि अत्थकामेन महन्तं अभिकङ्खता ।
सद्धम्मो गरुकातब्बो सरं बुद्धान सासनं ।।

इस लिए जो अर्थ-कामी हो, जिसकी महान आकांक्षा हो, उसे बुद्धों के शासन का स्मरण कर सद्धर्म के प्रति गौरव का भाव रखना चाहिए ।

८४. सम्मामनं पणिधाय सम्मा वाचं च भासिय ।
सम्मा कम्मानि कत्वान कायेन इध पुग्गलो ॥

जो व्यक्ति इस जीवन में सम्यक् मन करके, सम्यक् वचन को बोलकर शरीर से सम्यक् काम करके ।

८५. बहुस्सुतो पुञ्ञाकरो अप्पस्मिं इध जीविते ।
कायस्स भेदा सप्पञ्ञो सग्गं सोपपज्जति ॥

इस छोटे से जीवन में बहुश्रुत पुण्य करने वाला, प्रज्ञावान व्यक्ति मरणोपरान्त स्वर्ग में पैदा होता है ।

१०. सावक वग्ग ।

८६. मातरी पितरी चापि यो सम्मा पटिपज्जति ।
तथागते वा सम्बुद्धे अथवा तस्स सावके ।
बहुं च सो पसवति पुञ्ञामेतादिसो नरो ॥

जो माता पिता तथागत सम्बुद्ध अथवा उनके श्रावकों के प्रति सम्यक् व्यवहार करता है, वैसा आदमी बहुत पुण्य अर्जन करता है ।

८७. भिक्खू च सीलसम्पन्नो भिक्खुणीच बहुस्सुता ।
उपासकोच यो सद्धो या च सद्धा उपासिका ।
एते खो संघं सोभेन्ति एते हि संघसोभना ॥

जो भिक्षु शीलवान् होता है जो भिक्षुणी बहुश्रुत होती है, जो उपासक श्रद्धावान् होता है तथा जो उपासिका श्रद्धावान् होती है—वे संघ की शोभा बढ़ाते हैं । वे ही संघ शोभन हैं ।

८८. यस्स सब्रह्मचारीसु गारवो नूपलब्भति ।
आरका होति सद्धम्मा नभं पठविया यथा ॥

सब्रह्मचारियों को जिसका गौरव प्राप्त नहीं होता, वह सद्धर्म से वैसा ही दूर है जैसा कि आकाश पृथ्वी से ।

८९. यस्स सब्रह्मचारीसु गारवो उपलब्भति ॥
सो विरूहति सद्धम्मे खेत्ते बीजं व भद्दकं ।

सब्रह्मचारियों में जिस भिक्षु को गौरव प्राप्त होता है, वह सद्धर्म में वैसे उन्नति को प्राप्त करता है, जैसे की खेत में अच्छा बीज बढ़ता है ।

९०. इत्थिभावो किं कयिरा चित्तंहि सुसमाहिते ।
ञाणम्हि वत्तमानम्हि सम्मा धम्मं विपस्सतो ॥

जब चित्त समाहित हो जाता है ज्ञान उपस्थित रहता है और धर्म का पूर्णत: साक्षात्कार हो जाता है, तब स्त्री-भाव क्या करेगा ।

९१. यस्स नून सिया एवं इत्थाहं पुरिसोति वा ।
किञ्चि वा पन अस्मीति तं मारो वत्तुमरहति ॥

जिस किसी को ऐसा विचार होता है कि मैं स्त्री हूँ, अथवा पुरुष हूँ, अथवा कुछ और ही, उसीसे मार ऐसा कह सकता है ।

९२. दुम्मेधेहि पसंसा च विञ्ञूहि गरहा च या ।
गरहं व सेय्यो विञ्ञूहि यं चे बालप्पसंसना ॥

मूर्खों की जो प्रशंसा है, विज्ञों की जो निन्दा है, इन में मूर्खों की प्रशंसा की अपेक्षा विज्ञों की निन्दा कहीं अधिक श्रेष्ठ है ।

९३. सगारा अनगारा च उभो अञ्ञोञ्ञं निस्सिता ।
आराधयन्ति सद्धम्मं योगक्खेमं अनुत्तरं ॥

गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों एक दूसरे के सहारे परम कल्याण कारक सर्वोत्तम सद्धर्म का पालन करते हैं ।

९४. अनुबन्धोपि चे अस्स महिच्छो व विघातवा ।
एजानुगो अनेजस्स निब्बुतस्स अनिब्बुतो ।
गिद्धो सो वीतगेधस्स पस्स यावं च आरका ॥

यदि कोई बड़ी इच्छा वाला, द्रोही, तृष्णा का अनुगामी अशान्त और लोभी, तृष्णा रहित, शान्त और निर्लोभी के पीछे पीछे लगा हो तो भी देखा वह कितना दूर है ।

९५. सुखा संघस्स सामग्गि समग्गानञ्चनुग्गहो ।
समग्गरतो धम्मट्ठो योगक्खेमा न धंसति ॥

संघ का मिलकर रहना सुखदायक हे । मेल करने लीन धार्मिक व्यक्ति निर्वाण से वंचित नहीं होता ।

११. चित्त वग्ग ।

९६. चित्तेन नीयती लोको चित्तेन परिकस्सति ।
चित्तस्स एक धम्मस्स सब्बेव वसमन्वगू ॥

चित्त से लोक नियन्त्रित होता हे, चित्त से ही क्षय को प्राप्त होता है, चित्त ही एक धर्म है, सभी वश में चले जाते हैं ।

९७. मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति छाया'व अनपायिनी॥

सभी धर्मो (कार्यों) का मन अग्रगामी है, मन श्रेष्ठ है (कर्म) मनोमय है। यदि (कोई) प्रसन्न मनसे बोलता है या करता है, तो सुख उसका अनुगमन करता है जैसे की साथ न छोड़ने वाली अपनी छाया के समान।

९८. सुदुद्दसं सुणिपुनं यत्थ काम निपातिनं।
चित्तं रक्खेथ मेधावि चित्तं गुत्तं सुखावहं॥

जो कठिनाई से देखे जाने योग्य, बड़ा चतुर जहाँ चाहता है वहाँ भागने वाला ऐसे चित्त की बुद्धिमान रक्षा करे। सुरक्षित चित्त सुखकारी होता है।

९९. दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थ काम निपातिनो।
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं॥

कठिनाई से ग्रहण करने के योग्य, शग्रिगामी और जहाँ चाहता है वहाँ भागने वाला ऐसे चित्तका दमन करना अच्छा है। दमन किया गया चित्त सुखप्रद होता है।

१००. फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुन्निवारयं।
उजुं करोति मेधावि उसुकारोव तेजनं॥

चित्त चंचल है, चपल है, रक्षा करना और रोकना कटिन है। किन्तु मेधावी व्यक्ति इसे उसी प्रकार ॠजु बनाता है जैसे वाण बनाने वाला वाण को सीधा करता है।

१०१. न तं माता पिता कयिरा अञ्ञेवा पि च ञातका ।
सम्मा पणिहितं चित्तं सेय्यसो नं ततो करे ॥

न माता-पिता और अन्य किसी ज्ञाति उतनी भलाई नहीं कर सकते जितनी सन्मार्ग में लगा हुआ चित्त अपनी अधिक भलाई करता है ।

१०२. अनभिज्झालु विहरेय्य अब्यापन्नेन चेतसा ।
सतो एकग्गचित्तस्स अज्झत्तं सुसमाहितो ॥

लोभ-रहित क्रोध रहित चित्त से स्मृतिमान्, सुसमाहित, एकाग्र-चित्त होकर विहार करें ।

१०३. पञ्चकामगुणा लोके मनो छट्ठा पवेदिता ।
एत्थ छन्दं विराजेत्वा एवं दुक्खा पमुच्चति ॥

लोक में पाँच काम भोगों और छठाँ मन जो कहलाता है—इन में आसक्ति को छोड़कर दुःख से मुक्ति हो सकती है ।

१०४. मम सेलूपमं चित्तं ठितं नानुपकम्पति ।
विरत्तं रजनीयेसु कुप्पनीये न कुप्पति ।
ममेवं भावितं चित्तं कुतो मं दुक्खमेस्सति ॥

मेरा चित्त पर्वत की तरह स्थिर है और विचलित नहीं होता, रंजनीय वस्तुओं से विरक्त रहता है और द्वेषनीय वस्तुओं से दुष्ट नहीं होता । मेरा चित्त इस प्रकार अभ्यस्त है । इसलिए मुझे कहाँ से दुःख प्राप्त होगा ।

१०५. यो चरं वा यो तिट्ठं वा निसिन्नो उदवा सयं।
वितक्कं समयित्वान वितक्कोपसमे रतो।
भब्बो सो तादिसो भिक्खु फुट्ठं सम्बोधिमुत्तमं॥

जो चलते, खड़े, बैठे अथवा सोये वितर्क को शान्त कर, बितर्क के समन में लगा रहता है, वैसा भिक्षु उत्तम सम्बोधि को प्राप्त करने के योग्य है।

१२. सिक्खा वग्ग।

१०६. अतिसीतं अतिउण्हं अतिसायमिदं अहु।
इतिविस्सट्ठकम्मन्ते अत्था अच्चेन्ति मानवो॥

बहुत शीत है, बहुत ऊष्ण है, अब बहुत शाम हो गई हैं, इस तरह करते मनुष्य धन हीन हो जाते हैं।

१०७. योच सीतञ्च उण्हञ्च तिणा भिय्यो न मञ्ञाति।
करं पुरिस किच्चानि सो सुखा न विहायति॥

जो पुरुष काम करते शीत ऊष्ण को तृणसे अधिक नहीं मानता वह सुख से कभी वंचित नहीं होता।

१०८. अलीन चित्तो च सिया न चापि बहु चिन्तये।
निरामगन्धो असितो ब्रह्मचरिय परायणो॥

आलस्य रहित चित्त बने, बहुत चिन्तन न करे, क्लेश-रहित ओर आनासक्त हो ब्रह्मचर्य का पालन करे।

१०९. ऊनूदरो मिताहारो अप्पिच्छस्स अलोलुपो ।
स वे इच्छाय निच्छातो अनिच्छो होति निब्बुतो ।।

जो पेटू नहीं होता, मात्रा जानकर भोजन करता है, अल्पेच्छ तथा लोभ रहित होता है, वही इच्छा रहित सन्तोषी व्यक्ति शान्त होता है ।

११०. झानपसुतो धीरो वनन्ते रमितो सिया ।
झायेथ रुक्खमूलस्मिं अत्तानं अभितो सयं ।।

वन में रहते हुए धीर ध्यान तत्पर होवें, अपने को प्रदान कर वृक्ष के नीचे ध्यान करें ।

१११. कामच्छन्दो च व्यापादो थीनमिद्धञ्च भिक्खुणो ।
उद्धच्चं विचिकिच्छा च सब्बसो व न विज्जति ।।

उस भिक्षु में कामच्छन्द, व्यापाद, थीन-मिद्ध, औद्यत्य और विचि-किच्छा (शंखा) पूर्ण रूपेन विद्यमान नही है ।

११२. न सब्बतो मनो निवारये न मनो संयतत्तं आगतं ।
यतो यतो च पापकं ततो ततो मनो निवारये ।।

सभी जगह से उस मन को हटाना नहीं है, जो मन अपने वश में आगया है, जहाँ जहाँ पाप है, वहाँ वहाँ से मन को हटाना है ।

११३. विरियसातच्चसम्पन्नो युत्तयोगो सदा सिया ।
न च अप्पत्वा दुक्खन्तं विस्सासमेय्य पण्डितो ।।

वीर्य और तत्परता से युक्त हो सदा योगाभ्यास में लगे रहे । पण्डित दुःख के अन्तको प्राप्त किये बिना अपनी प्राप्ति पर विश्वास न करें ।

११४. **समाधिरतनमालस्स कुवितक्का न जायरे ।**
न च विक्खिपते चित्तं एतं तुम्हे पिलन्धथ ॥

जिसने अपने मुकुट में समाधि रत्न को जड़ लिया है, उसे कुवितर्क सता नहीं सकते । उसका चित्त कभी भी चंचल नहीं हो सकता, उसे आप भी पहन लो !

११५. **आनापानसती यस्स परिपुण्णा सुभाविता ।**
अनुपुब्बं परिचिता यथा बुद्धेन देसिता ।
सो मं लोकं पभासेति अब्भामुत्तोव चन्दिमा ॥

जिसकी आनापान स्मृति परिपूर्ण है, अच्छी तरह अभ्यस्त है, बुद्ध के उपदेश के अनुसार क्रमशः सेवित है, वह इस संसार को वैसे ही प्रकाशमान् करता है, जैसे कि बादलों से मुक्त चन्द्रमा ।

१३. वायाम वग्ग ।

११६. **पमादो रजो पमादा पमादानुपतितो रजो ।**
अप्पमादेन विज्जाय अब्बूल्हे सल्लमत्तनो ॥

प्रमाद रज है। प्रमाद के कारण ही रज उत्पन्न होता है। अप्रमाद और विद्या से अपने दुःख रूपी कांटे को निकाल फेंके।

११७. **निद्दासीली सभासीली अनुट्ठाता च यो नरो ।**
अलसो कोध पञ्ञानो तं पराभवतो मुखं ॥

जो व्यक्ति निद्राशीली, भीड़-भाड़ में मस्त रहने वाला, परिश्रम न करने वाला, आलसी और क्रोधी है, वह उसकी अवनति का कारण है ।

११८. संवरो च पहाणञ्च भावना अनुरक्खना ।
एते पधाना चत्तारो देसितादिच्चबन्धुनो ।
ये हि भिक्खु इधातापि खयं दुक्खस्सपापुणे ।।

संवर प्रयत्न, प्रहाण प्रयत्न, भावना प्रयत्न तथा अनुरक्षण प्रयत्न, इन चार प्रयत्नों का आदित्य बन्धु (बुद्ध) ने दिया है। जो कोई भी इन में प्रयत्नशील होगा, वह दुःख के क्षय को प्राप्त करेगा।

११९. उट्ठहथ निसीदथ को अत्थो सुपिनेन वो ।
आतुरानंहि का निद्दा सल्लविद्धानरुप्पतं ।।

उठो, बैठो, सोने से तुम्हें क्या लाभ है? कांटा चुभे पीड़ित रोगियों की कैसी नींद है।

१२०. अमोघं दिवसं कयिरा अप्पेन बहुकेन वा ।
यं यं विजहते रत्तिं तदूनं तस्स जीवितं ।।

अल्प या बहुत साधना द्वारा दिवस को खाली न जाने दे। जो जो रात बीतती जाती है, उससे जीवन भी कम होता जाता है।

१२१. यो दन्धकाले दन्धोति तरणीये च तारये ।
योनिसो संविधानेन सुखं पप्पोति पण्डितो ।।

जो मन्दगति के समय मन्दगामी होता है और शीघ्र गति के योग्य समय शीघ्र गामी होता है, विवेक शील संविधान के कारण पण्डित सुख को प्राप्त होता है।

१२२. आरद्धविरियो पहितत्तो निच्चं दल्हपरक्कमे ।
समग्गे सावके पस्स एसा बुद्धान वन्दना ।।

प्रयत्नशील, त्यागी, नित्य दृढ़ पराक्रमी और एकता में प्रसन्न बुद्ध के श्रावकों को देखो यह बुद्धों की वन्दना है।

१२३. निद्दं तन्दिं विजम्भितं अरतिं भत्तसम्मदं ।
विरियेन तं पनामेत्वा अरियमग्गो विसुज्झति ।।

निद्रा, तन्द्रा, जँभाई लेना, जी नहीं लगना, भोजन के बाद नशा आ जाना, उत्साह पूर्वक इन्हें दबा देने से आर्य मार्ग शुद्ध हो जाता है ।

१२४. सद्धाय तरती ओघं अप्पमादेन अण्णवं ।
विरियेन दुक्खं अच्चेति पञ्ञाय परिसुज्झति ।।

मनुष्य श्रद्धा से सांसारिक बाढ़ को पार कर जाता है । भव सागर को अप्रमाद से लाँघ जाता है । पराक्रम से दुःख को समाप्त कर देता है और प्रज्ञा से परिशुद्ध हो जाता है ।

१२५. उजुमग्गम्हि अक्खाते गच्छथ मा निवत्तथ ।
अत्तनाचोदयत्तानं निब्बानं अभिहारये ।।

बताये हुए ऋजु मार्ग पर चले और लौटे नहीं ; अपने को समझाते हुए निर्वाण को प्राप्त करें ।

१४. सति वग्ग ।

१२६. सम्बाधेवापि विन्दन्ति धम्मं निब्बानपत्तिया ।
ये सतिं पच्चलद्धंसु सम्मा ते सुसमाहिता ।।

जिनने स्मृतिका लाभ कर लिया वे अच्छीतरह समाहित हो, निर्वाण की प्राप्ति के लिए धर्म का साक्षात्कर लेते हैं ।

१२७. **सचे धावति ते चित्तं कामेसु च भवेसु च ।**
खिप्पं निग्गण्ह सतिया किट्ठादं विय दुप्पसुं ।।

यदि तुम्हारा चित्त कामतृष्ण और भवतृष्णा की ओर दौड़े तो स्मृति से शीघ्र ही उसका निग्रह वैसे ही करो, जैसे कि नई फसल को खाने वाले दुष्ट पशु को ।

१२८. **उभिन्नमत्थं चरति अत्तनो च परस्स च ।**
परं सङ्कुपितं ञत्वा यो सतो उपसम्मति ।।

दोनों को लाभ पहुँचाता है, अपने को भी और दूसरे को भी, दूसरे को गुस्साया जान जो सावधान हो कर शान्त रहता है ।

१२९. **उभिन्नं तिकिच्छन्ठाणं अत्तनो च परस्स च ।**
जना मञ्ञन्ति बालोति ये धम्मस्स अकोविदा ।।

दोनों की इलाज करने वाले उसे, अपनी भी और दूसरे को भी, लोग मूर्ख समझते हैं, जिन्हें धर्म का कुछ ज्ञान नहीं ।

१३०. **यतञ्चरे यतंत्तिट्ठे यतं अच्छे यतं सये ।**
यतं सम्मिञ्जये भिक्खू यथमेनं पसारये ।।

जो भिक्षु संयत पूर्वक चले, संयत पूर्वक खड़ा हो, संयत पूर्वक बैठे, संयत पूर्वक लेटे, संयत पूर्वक सिकोड़े और संयत पूर्वक पसारे ।

१३१. **उद्धं तिरियं अपाचिनं यावता जगतो गति ।**
समवेक्खिताव धम्मानं खन्धानं उदयब्बयं ।।

ऊपर नीचे तिरछे जहाँ तक संसार की गति है,वहाँ तक धर्मों और स्कन्धों की उदय और व्यय को देखने वाला होकर बिहरे ।

१३२. एवं विहारिं आतापिं सन्तवुत्ति अनुद्धतं ।
चेतो समथ सामीचि सिक्खमानं सदा सतं ।
सततं पहितत्तोति आहु भिक्खुं तथा विधं ।।

इस प्रकार विहरने वाले, उद्योगी, शान्त, औद्धत्य रहित, सदा स्मृतिमान् और चित्त की उचित शान्ति के अभ्यास करने में सदा लगे हुए है, वैसे भिक्षु को सदा संयमी कहते हैं ।

१३३. न सो रज्जति धम्मेसु धम्मं ञात्वा पतिस्सवो ।
विरत्तचित्तो वेदेति तं च नाज्झोस्स तिट्ठति ।।

जो विचार को जानकर स्मृतिमान रहता है, वह विचारों में आसक्त नहीं होता । वह अनासक्त चित्त हो अनुभव पाता है और उसमें नहीं बैठता ।

१३४. सतिपट्ठान कुसला बोज्झङ्गभावना रता ।
विपस्सका धम्मधरा धम्म नगरे वसन्ति ते ।।

स्मृतिप्रस्थान में कुशल, बोध्यङ्ग की भावना में रत, विदर्शक, धर्मधर इस धर्म नगर में रहते हैं ।

१३५. सम्मप्पधान सम्पन्नो सतिपट्ठान गोचरो ।
विमुत्तिकुसुम सञ्छन्नो परिनिब्बिस्सत्यनासवो ।।

जो सम्यक्र उद्योग से युक्त है, स्मृति प्रस्थान जिसका विषय है, विमुक्ति रूपी कुसुमों से अच्छादित, आश्रव रहित वह शान्ति को प्राप्त होगा ।

१५. अत्तपर वग्ग ।

१३६. **सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं ।**
अत्तानं उपमं कत्वा न हणेय्य न घातये ।।

सभी दण्ड से डरते हैं, सभी को जीवन प्रिय है, सबको अपने समान जानकर न किसी को मारे, न किसी का घातन करे ।

१३७. **अत्तनाव कतं पापं अत्तना सङ्किलिस्सति ।**
अत्तना अकतं पापं अत्तना व विसुज्झति ।
सुद्धि असुद्धि पच्चत्तं नाञ्ञमञ्ञो विसोधये ।।

मनुष्य अपने से किये गये पाप से अपने को मलिन करता है, अपने से न किये गये पाप से स्वयं शुद्ध रहता है । शुद्धि और अशुद्धि अपने अपने में है । मनुष्य एक दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता ।

१३८. **अत्तदत्थं परत्थेन बहुनापि न हापये ।**
अत्तदत्थं अभिञ्ञाय सदत्थपसुतो सिया ।।

मनुष्य पराये के बहुत हित के लिए अपने हित की हानि न करे । अपने अर्थ की बात को भली प्रकार समझकर अपने अर्थ के साधन में लगा रहे ।

१३९. **अत्तानमेव पठमं पतिरूपे निवेसये ।**
अथञ्ञमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो ।।

पहले अपने को उचित कार्य में लगावें, बाद में दूसरों को उपदेश दे । इस तरह पण्डित दूषित नहीं होगा ।

१४०. **अत्तानं चे तथा कयिरा यथाञ्ञं अनुसासति ।**
सुदन्तो वत धम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ॥

अपने को गैसा बनावे, जेसा दूसरे को अनुशासन करता है, पहले अपने को भली प्रकार दमन करके दूसरे का दमन करे, वास्तव में अपने दमन करना कठिन है ।

१४१. **यो चत्तानं समुक्कङ्से परञ्चमवजानति ।**
निहीनो सेन मानेन तं जञ्ञा वसलो इति ॥

जो अपनी बड़ाई करता है, दूसरों की निन्दा करता है, और अपने उस अभिमान से गिर गया है, उसे वृषल जानें ।

१४२. **न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं ।**
अत्तनाव अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ॥

मनुष्य दूसरों के दोषों को और दूसरों के अच्छे और बुरे कार्यों को न देखे। उसे केवल अपने स्वयं के अच्छे और बुरे कार्यो को देखना चाहिए ।

१४३. **परवज्जानुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसञ्ञिणो ।**
आसवा तस्स वड्ढन्ति आरा सो आसवक्खया ॥

दूसरों के दोष को देखने वाला सदैव दूसरों के निन्दा करने वाले के आश्रव (क्लेश) बढ़ते है । वह अश्रवक्षय से दूर है ।

१४४. **सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं ।**
परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथाभुसं ।
अत्तनो पन छादेति कलिंव कितवा सठो ॥

दूसरों का दोष देखना आसान है, किन्तु अपना दोष देखना कठिन है । वह दूसरे के दोषों को भूसे की तरह उड़ाता है, परन्तु अपने दोषों को वैसे ही ढ़ाँकता है, जैसे बेईमान जुवारी पाँसे को ।

१४५. अत्तना चोदयत्तानं पटिमासे अत्तमत्तना ।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खु विहाहिसि ॥

जो अपने आपको प्रेरित करेगा, अपने आपको विमंसित करेगा, अपने द्वारा रक्षित किया हुआ, स्मृतिमान् वह भिक्षु सुख से विहार करेगा ।

१६. मेत्ता वग्ग ।

१४६. अनत्थ जननो दोसो दोसो चित्तप्पकोपनो ।
भयं अन्तरतो जातं तं जनो नाव बुज्झति ॥

द्वेष अनर्थ उत्पन्न करने वाला है, द्वेष चित्त को बिगाड़ने वाला है। अपने ही भीतर उत्पन्न भय को लोग नहीं जान पाते है।

१४७. दुट्ठो अत्थं न जानाति दुट्ठो धम्मं न पस्सति ।
अन्धं तमं तदा होति यं दोसो सहते नरं ॥

द्वेषी हित को नहीं जानता है, द्वेषी कर्म को नहीं देखता है। जिस मनुष्य को द्वेष अपने वश में कर लेता है वह उस समय बिल्कुल अन्धा हो जाता है।

१४८. यो न हन्ति न घातेति न जिनाति न जापये ।
मेत्तं सो सब्ब भूतेसु वेरं तस्स न केनचि ॥

जो न हनन करता है न घातन करता है न जीतता है और न छीनता है तथा सभी प्राणियों से मैत्री करता है, उसे किसी से भी दुश्मनी नही होती ।

१४६. सतीमतो सदा भद्दं सतिमासुखमेधति ।
सतीमतो सुवे सेय्यो वेरान् परिमुच्चति ॥

स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है, स्मृतिमान् को सुख होता है, वही श्रेष्ठ है जो स्मृतिमान् है, और वैर से मुक्त होता है ।

१५०. यस्स सब्बं अहोरत्तं अहिंसाय रतो मनो ।
मेत्तं सो सब्बभूतेसु वेरं तस्स न केनचि ॥

जिस का मन दिन-रात अहिंसा में लगा रहता है, सभी जीवों के प्रति जो सदा मैत्री करता है, उसे किसी के साथ वैर नहीं रह जाता ।

१५१. यो वे मेत्तेन चित्तेन सब्बलोकानुकम्पति ।
उद्धं अधो च तिरियञ्च अप्पमानेन सब्बसो ॥

जो अप्रमान मैत्री चित्त से ऊपर-नीचे तथा तिर्यक् दिशा में सारे लोकों पर अनुकम्पा करता है ।

१५२. अप्पमानं हितं चित्तं परिपुण्णं सुभावितं ।
यं पमाणकतं कम्मं न तं तत्रावसिस्सति ॥

प्रमाण रहित, परिपूर्ण और भली प्रकार अभ्यास किये हुए मैत्री चित्त के आगे जो सीमित कर्म है उनका फल नहीं होता ।

१५३. मेत्त चित्ता कारुणिका होथ सीलेसु संवुता ।
आरद्धविरिया पहितत्ता निच्चं दल्हपरक्कमा ॥

मैत्री चित्त युक्त हों, कारुणिक हों, शील के नियमों में संयत हों, उद्योगी हों, निर्वाण में रत हों और नित्य दृढ़ पराक्रमी हो ।

१५४. यथा पि एक पुत्तस्मिं पियस्मिं कुसलो सिया ।
एवं सब्बेसु पाणेसु सब्बत्थ कुसलो सिया ॥

जिस प्रकार माता अपने प्रिय एक मात्र पुत्र के प्रति प्रेम भाव रखती है उसी प्रकार सर्वत्र सभी प्राणियों के प्रति प्रेम भाव रक्खे ।

१५५. चित्तं च सुसमाहितं विप्पसन्नमनाविलं ।
अखिलं सब्बभूतेसु सो मग्गो ब्रह्मपत्तिया ॥

सुसमाहित चित्त, बिल्कुल प्रसन्न और निर्मल, सभी जीवों पर प्रेम करना, यही ब्रह्मत्व की प्राप्ति का मार्ग है ।

१७. मेत्ता वग्ग ॥

१५६. यथा पि उदकं नाम कल्याणे पापके जने ।
समं फरति सीतेन पवाहेति रजोमलं ॥

जिस प्रकार पानी पुण्य और पापी दोनों को ही समान रूप से शीतलता पहुँचाता हे, दोनों के मैल को धो देता है ।

१५७. तथेव त्वं पि अहिताहिते समं मेत्ताय भावये ।
मेत्तापारमितं गन्त्वा सम्बोधिं पापुणिस्ससि ॥

उसी प्रकार तू भी हित अहित दोनों के प्रति समान भाव से मैत्री पारमिता का पूर्णकर सम्बोधि को प्राप्त करेगा ।

१५८. यथा अहं तथा एते यथा एते तथा अहं ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हणेय्य न घातये ॥

जैसा मैं हूँ वैसे ये प्राणी भी हैं, जैसे ये प्राणी हैं, वैसा मैं हूँ । इस प्रकार दूसरों को भी अपने समान जानकर न तो किसी का हिंसा करे और न तो किसी का वध करें ।

१५९. अपादकेहि मे मेत्तं मेत्तं दिपादकेहि मे ।
चतुप्पदेहि मे मेत्तं मेत्तं बहुप्पदेहि मे ॥

जिनके पाँव नही है, ऐसे प्राणियों में से भी मेरी मैत्री है, दो पाँव वालों से भी मेरी मैत्री है, चतुष्पदों से भी मेरी मैत्री है, तथा बहुत पाँव वालों से भी मेरी मैत्री है ।

१६०. मा मं अपादको हिंसि मा मं हिंसि दिपादको ।
मा मं चतुप्पदो हिंसि मा मं हिंसि बहुप्पदो ॥

बिना पाँव का कोई प्राणी मुझे कष्ट न दे, दो पाँव वाला प्राणी मुझे कष्ठ न दे, कोई चौपाया मुझे कष्ट न दे तथा कौई बहुत पाँववाला मुझे कष्ट न दे ।

१६१. सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे भूता च केवला ।
सब्बे भद्रानि पस्सन्तु मा कञ्चि पापमागमा ॥

जितने सत्व है, जितने प्राणी है जितने भूत है सभीका कल्याण हो, किसी को भी दुःख प्राप्त न हो ।

१६२. सब्बमित्तो सब्बसखो सब्बभूतानुकम्पको ।
मेत्तं चित्तञ्च भावेमि अब्यापज्जरतो सदा ॥

मै सबका मित्र हूँ, सबका सखा हूं और सभी प्राणियों का अनुकम्पक हूँ । वैमनस्य रहित हो मैं सदा मैत्री चित्त का अभ्यास करता हूँ ।

१६३. **असंहीरं असंकुप्पं चित्तं आमोदयामहं ।**
ब्रह्मविहारं भावेमि अकापुरिससेवितं ॥

राग से विचलित न हो और द्वेष से कुपित न हो, मै चित्त को प्रमुदित करता हूँ । नीच पुरुषों द्वारा असेवित ब्रह्मविहार का अभ्यास करता हूँ ।

१६४. **तस्मा सकं परेसम्पि कातब्बा मेत्त भावना ।**
मेत्तचित्तेन फरितब्बं एतं बुद्धान सासनं ॥

इसलिए अपने और दूसरे लोगों के प्रति भी मैत्री भावना करनी चाहिए, मैत्री चित्त से ससार को भर देना चाहिए, यही बुद्धों का उपदेश है ।

१६५. **यो च मेत्तं भावयति अप्पमानं पतिस्सतो ।**
तनू संयोजना होन्ति पस्सतो उपधिक्खयं ॥

जो स्मृतिमान् अप्रमान मैत्री को बढ़ाता है, उसस निर्वाण को देखते हुए संयोजन (बन्धन) दुर्बल होते हैं ।

१८. सुख वग्ग ।

१६६. **यो पुब्बे करणीयानि पच्छा सो कातुमिच्छति ।**
सुखा सो धंसते ठाना पच्छा चमनुतप्पति ॥

जो पहले करने योग्य काम को पीछे करना चाहता है, वह सुख-स्थान से वञ्चित हो जाता है और बाद को पछताता है ।

१६७. **कोधं छेत्वा सुखं सेति कोधं छेत्वा न सोचति ।**
कोधस्स विसमूलस्स मधुरग्गस्स ब्राह्मण ।
वधं अरिया पसंसन्ति तं हि छेत्वा न सोचति ।।

क्रोध का नाश कर सुख से सो जाता है, क्रोध का नाश कर शोक नहीं करता, विष के मूल स्वरूप क्रोध का, हे ब्राह्मण ! पहले बड़ा अच्छा लगता है, (क्रोध का) बध करना उत्तम पुरुषों से प्रशंसित है, उसी का नाश करके शोक नहीं करता ।

१६८. **यं परे सुखतो आहु तदरिया आहु दुक्खतो ।**
यं परे दुखतो आहु तदरिया सुखतो विदू ।।

जिसे दूसरे लोग सुख कहते हैं, उसे पण्डित लोग दु:ख कहते हैं, जिसे दूसरे लोग दु:ख कहते हैं, उसे पण्डित लोग सुख कहते हैं ।

१६९. **सब्बदा बा सुखं सेति ब्राह्मणो परिनिब्बुतो ।**
यो न लिप्पति कामेसु सीतिभूतो निरूपधि ।।

सदा ही सुख से सोता है, जो पाप रहित और विमुक्त है, जो कामों में लिप्त नही होता, उपधि रहित हो जो शान्त हो गया है ।

१७०. **यंञ्च कामसुखं लोके यञ्चिदं दिबियं सुखं ।**
तण्हक्खय सुखस्स ते कलं नाग्घति सोलसिं ।।

जो साँसारिक काम सुख है, और ज़ो तृष्णा के क्षीण होने से दिव्य सुख होता हे, उनमें यह उसकी सोलहवीं कला भर भी नहीं है ।

१७१. **सब्बा आसत्तियो छेत्वा विनेय्य हृदये दरं ।**
उपसन्तो सुखं सेति सन्तिं पप्पुरुह चेतसा ।।

सभी आसक्तियों को, हृदय के क्लेशों को दबा, शान्त हो, चित्त की शान्ति पाकर, सुख से सोता है ।

१७२. **पामोज्ज बहुलो भिक्खु धम्मे बुद्धप्पवेदिते ।**
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ।।

जो भिक्षु बुद्ध द्वारा देशित धर्म में प्रमोद बहुल हो विहरता है, वह संस्कारों के उपशम सुख रूपी शान्त पद को प्राप्त होता है।

१७३. **सुखो विवेको तुट्ठस्स सुतधम्मस्स पस्सतो ।**
अब्यापज्झं सुखं लोके पाणभूतेसु संयमो ।।

जो सन्तुष्ट और बुद्ध धर्म का ज्ञानी है, उसी को यथार्थ में सुख और विवेक है। सभी प्राणियों के प्रति संयम का होना वास्तव में इस संसार का सुख है।

१७४. **सुखा विरागता लोके कामानं समतिक्कमो ।**
अस्मिमानस्स यो विनयो एतं वे परमं सुखं ।।

संसार में अनाशक्त होना और अपने कामों को जीत लेना, आत्मभाव को जो नाश कर देता है, वही सुख है, वही परम सुख है।

१७५. **सुसुखं वत निब्बानं सम्मासम्बुद्ध देसितं ।**
असोकं विरजं खेमं यत्थ दुक्खं निरुज्झति ।।

सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा देशित निर्वाण सुखकारी है, शोक रहित है, रज रहित है, क्षेम है, जाहाँ कि दुःख का निरोध हो जाता है।

१९. तुण्ही वग्ग ।

१७६. **समानभावं कुब्बेथ गामे अकुट्ठवन्दितं ।**
मनोपदोसं रक्खेय्य सन्तो अनुण्णतो चरे ।।

गाँव में जो वन्दना करते है या निन्दा करते हैं, उनके प्रति समान भाव रखे, मन को दूषित न होने दे, शान्त और विनीत होकर विचरण करें।

१७७. तं नदीहि विजानाथ सोब्भेसु पदरेसुच ।
सनन्ता यन्ति कुस्सुब्भा तुण्ही याति महोदधि ॥

उसे नदी समझो, छोटी नदी नालों के बीच में। छोटी नदियाँ शोर करती बहती है, किन्तु महानदी चुपचाप बहती है।

१७८. यदूनक तं सणति यं पूरं सन्तमेव तं ।
अड्ढकुम्भूपमो बालो रहदो पूरोव पण्डितो ॥

जिसमें कमी होती है, वह शोर करता है, जो पूर्ण होता है. वह शान्त होता है, किन्तु पन्डित भरे हुए निर्मल जलाशय की तरह है।

१७९. कायमुनिं वाचामुनिं मनोमुनिमनासवं ।
मुनिमोनेय्य सम्पन्नं आहु निन्हातपापकं ॥

कायिक, वाचिक और मानसिक मौनता से युक्त अनाश्रवी मुनि पापों को धोकर बहा दिया करते है।

१८०. उपसन्तो उपरतो मन्तभानि अनुद्धतो ।
धुनाति पापके धम्मे दुमपत्तं व मालुतो ॥

जो उपशान्त है, उपरत है, ज्ञानपूर्वक बोलता है, अभिमान रहित है, वह उसी प्रकार पाप धर्मों को हिला देता है जिस प्रकार हवा पेड़ के पत्ते को।

१८१. चक्खुमस्स यथा अन्धो सोतवा बधिरो यथा ।
पञ्ञावस्स यथा मूगो बलवा दुब्बलोरिव ।
अथ अत्थे समुप्पन्ने समेथ मतसायिकं ॥

चक्षुमान् होने पर भी अन्धे की भाँति हो, श्रोतवान् होने पर भी बधिर की भाँति हो, प्रज्ञावान होने पर भी मूख की भाँति हो, बलवान होने पर भी निर्बल की भाँति हो, जब अर्थ की बात आती है तब उस पर मनन करो।

१८२. **अवितक्कं समापन्नो सम्मासम्बुद्ध सावको ।**
अरियेन तुण्हीभावेन उपेतो होति तावदे ॥

सम्यक् सम्बुद्ध का श्रावक अवितर्क की प्राप्त हो आर्य मौन भाव से युक्त हो जाता है ।

१८३. **यथा जलो व मूगो व अत्तानं दस्सये तथा ।**
नातिवेलं सम्भासेय्य संघमज्झम्हि पण्डितो ॥

जड़ और मूक जैसा है अपने को वैसा दर्शाये । पण्डित सघ के बीच अधिक समय तक भाषण न करे ।

१८४. **एतं नागस्स नागेन ईसादन्तस्स हत्थिनो ।**
समेति चित्तं चित्तेन यं एको रमती वने ॥

वन में रमन करने वाला, ईसा के समान दाँत वाला हाथी का चित्त, बुद्ध के चित्त का समान है ।

१८५. **विह विहाभिनदिते सिप्पिकाभिरुतेहि च ॥**
न मे तं फन्दती चित्तं एकत्तनिरतं हि मे ॥

मार ! तेरा " विह-विह " शब्द गिलहरी की आवाज जैसा है । मैरा मन उससे विचलित नहीं होता, वह निर्वाण प्राप्ति में रत है ।

२०. विपस्सना वग्ग ।

१८६. **पञ्चङ्गिकेन तुरियेन न रती होति तादिसी ।**
यथा एकग्गचित्तेन सम्मा धम्मं विपस्सतो ॥

पाँच प्रकार के तूर्यों से भी वैसा आनन्द नहीं मिलता, जैसा आनन्द एकाग्र चित्त हो सम्यक् रूप से धर्म देखने वाले को मिलता है ।

१८७. ये सन्तचित्ता निपका सतिमन्तो च झायिनो ।
सम्मा धम्मं विपस्सन्ति कामेसु अनपेक्खिनो ॥

जो शान्त चित्त ज्ञानी, स्मृतिमान् और ध्यानी हैं, काम भोगों में अनाशक्त हो भली प्रकार धर्म को देखते हैं।

१८८. अप्पमादरता सन्ता पमादे भयदस्सिनो ।
अभब्बा परिहानाय निब्बानस्सेव सन्तिके ॥

जो प्रमाद नहीं करने वाले तथा प्रमाद करने में भय खाने वाले है, वे अवनति से परे हैं, वे तो निर्वाण के समीप है।

१८९. अतीतं नानुसोचन्ति नप्पजप्पमनागतं ।
पच्चुप्पन्नेन यापेन्ति तेन वण्णो पसीदति ॥

बीते हुए का वे शोक नहीं करते, आने वाले पर बड़े मनसूबे नहीं बाँधते, जो मौजूद है उसी से गुजारा करते हैं, उसी से उनका चेहरा खिला रहता है।

१९०. अतीतं नं वागमेय्य नप्पतिकङ्खे अनागतं ।
यदातीतं पहीणं तं अप्पत्तञ्चमनागतं ॥

अतीत का अनुगमन न करे, न भविष्य की चिन्ता में पड़े। जो अतीत है वह बीत गया और भविष्य अभी आ नहीं पाया।

१९१. पच्चुप्पन्नञ्च यो धम्मं तत्थ तत्थ विपस्सति ।
असंहीरं असंकुप्पं तं विद्वामनुब्रूहये ॥

वर्तमान जो धर्म है उसी को जहाँ तहाँ देखे। जो असंहारी, असंकोपी है उसे विद्वान बढ़ावे।

१६२. चित्तं उपट्ठपेत्वान एकग्गं सुसमाहितं ।
पच्चवेक्खथ संसारे परतो नो च अत्ततो ।।

चित्त को एकाग्र कर, समाधि में स्थित कर विचार करो कि संस्कार अपने नहीं है, पराये हैं ।

१६३. फेनपिण्डूपमं रुपं वेदना बुब्बुलूपमा ।
मरीचिकूपमा सञ्ञा सङ्खारा खदलूपमा ।
मयूपमञ्च विञ्ञाणं देसितादिच्चबन्धुना ।।

रूप फेनपिण्ड के उपमा है, वेदना की उपमा बुल-बुले से है, संज्ञा मरीचिका की तरह है, संस्कार केले की पेड़ की तरह है, जादू के खेल के समान विज्ञान है सूर्य वंशोत्पन्न बुद्ध ने बताया है ।

१६४. सब्बलोकं अभिञ्ञाय सब्बलोके यथातथं ।
सब्बलोकविसंयुत्तो सब्बलोके अनूपयो ।।

सारे संसार को जानकर, सारे संसार में यथार्थ रूप से, सारे संसार से अलग, सारे संसार में अनुपम ।

१६५. सब्बे सब्बाभिभू धीरो सब्बगन्थप्पमोचनो ।
फुट्ठस्स परमा सन्ति निब्बानं अकुतोभयं ।।

सब में अभिभू, धीर, सारी ग्रन्थियों को खोलकर, निर्भय परम शान्त निर्वाण को पा लिए हैं ।

२१. बुद्ध वग्ग ।

१९६. **यथापि उदके जातं पुण्डरीकं पवड्ढति ।**
नोपलिप्पति तोयेन सुचिगन्धं मनोरमं ॥

सुगन्धयुक्त और सुन्दर कमल जल में उत्पन्न हो, जल में बढ़कर जल से लिप्त नहीं रहता ।

१९७. **तथेव च लोके जातो बुद्धो लोके विहरति ।**
नोपलिप्पति लोकेन तोयेन पदुमं यथा ॥

उसी प्रकार बुद्ध संसार में उत्पन्न हो संसार में रहते हुए संसार में लिप्त नहीं रहता ।

१९८. **महासमुद्दो पठवी पब्बतो अनिलो पि च ।**
उपमाय न युज्जन्ति सत्थु वरविमुत्तिया ॥

शास्ता की विमुक्ति के वर्णन में महासमुद्र, पृथ्वी, पर्वत और वायु भी पर्याप्त नहीं है ।

१९९. **अप्पमेय्यं पमिनन्तो कोध विद्वा विकप्पये ।**
अप्पमेय्यं पमायिनं निवुतं मञ्ञो अकिस्सवं ॥

जिसका थाह नहीं है भला कौन बुद्धिमान् उसका थाह लगाना चाहेगा ? जिसका पार नहीं है, उसका पार लगाने की कोशिश करने वाले को मैं मूढ़ और प्रज्ञा विहीन समझता हूँ ।

२००. **अरञ्ञे रुक्खमूलेवा सुञ्ञागारेव भिक्खवो ।**
अनुस्सरेथ सम्बुद्धं भयं तुम्हाक नो सिया ॥

हे, भिक्षुओं ! अरण्य में या वृक्ष मूल में या शून्यागार में सम्बुद्ध का स्मरण करो, तुम्हारा भय नहीं रहने पावेगा ।

२०१. हितानुकम्पी सम्बुद्धो यदञ्ञं अनुसासति ।
अनुरोध विरोधेहि विप्पमुत्तो तथागतो ।।

हित और अनुकम्पा करने वाले बुद्ध दूसरे को अनुशासन कर रहे हैं, तथागत अनुरोध और विरोध से मुक्त हैं।

२०२. यथा रत्तिक्खये पत्ते सुरियस्सुग्गमनं धुवं ।
तथेव बुद्धसेट्ठानं वचनं धुव सस्सतं ।।

जिस प्रकार रात्रि के बीतने पर सूर्योदय निश्चित है, इसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों के वचन भी निश्चित है और शास्वत है।

२०३. सत्थुगरु धम्मगरु संघे च तिब्बगारवो ।
समाधिगरु आतापि सिक्खाय तिब्बगारवो ।
अप्पमाद गरू भिक्खू पटिसंथारगारवो ।
अबब्बो परिहानाय निब्बानस्सेव सन्तिके ।।

शास्ता के प्रति गौरव, धर्म का गौरव, संघ के प्रति तीव्र गौरव का भाव, अप्रमाद के प्रति गौरव का भाव तथा मैत्री भाव के प्रति गौरव का भाव जिस भिक्षु में होता है उसका पतन असम्भव है, वह निर्वाण के समीप है।

२०४. तेन हातप्पं करोहि इधेव निपको सतो ।
इतो सुत्वान निग्घोसं सिक्खे निब्बानमत्तनो ।।

तो तुम प्रयत्न करो। यहीं एकान्तवासी और स्मृतिमान हो, यहाँ बात सुनकर, अपनी निर्वाण प्राप्ति के लिए अभ्यास करो।

२०५. ये पवुत्ते सत्थिपदे अनुसिक्खन्ति झायिनो ।
काले ते अप्पमज्जन्ता न मच्चुवसगा सियुं ।।

मेरी शिक्षाओं का जो ध्यानी पालन करते हैं, यथोचित काल में प्रमाद नहीं करते हुए वे मृत्यु के वश में जाने वाले नहीं होते।

२२. कित्तिसद्द वग्ग ।

२०६. **एस सुत्वा पसीदामि वचो ते इसिसत्तम ।
अमोघं किर मे पुट्ठं न मं वञ्चेसि ब्राह्मणो ।।**

उत्तम ऋषि ! आपकी बात को सुनकर मैं प्रसन्न हूँ। मेरा प्रश्न खाली नहीं गया। आपने मेरी उपेक्षा नहीं की।

२०७. **अनुसासि मं अरियवता अनुकम्पि अनुग्गहि ।
अमोघो तुय्हं ओवादो अन्तेवासिम्हि सिक्खितो ।।**

आर्य वृत पर आपने मुझे उपदेश दिया, अनुकम्पा की, अनुग्रह किया । आपका अनुशासन खाली नहीं गया, आपका शिष्य बनकर शिक्षित हुआ हूँ ।

२०८. **उपेमि बुद्धं सरणं धम्मं सघं च तादिनं ।
समादियामि सीलानि तं मे अत्थाय हेहिति ।।**

मैं उन अद्वितीय गुणों से युक्त बुद्ध, धर्म और संघ शरण जाता हूँ। सदाचार का पालन करूँगा, वह मेरे लिये मंगलकारी हो ।

२०९. **असोकं विरजं खेमं अरियट्ठङ्गिकं उजुं ।
तं मग्गं अनुगच्छामि येन तिण्णा महेसिनो ।।**

निःशोकी, निक्लेशी, कल्याणकारी और ऋजु आर्य अष्टांगिक मार्ग में चलकर माहार्षि लोग संसार को पार किये हैं, उसी मार्ग में मैं भी जा रही हूँ ।

२१०. **सो अहं विचरिस्सामि गामा गामं पुरा पुरं ।
नमस्समानो सम्बुद्धं धम्मस्स च सुधम्मतं ।।**

अब मैं गाँव से गाँव, नगर से नगर में सम्यक् सम्बुद्ध और उनके धर्म की सुधर्मता को नमस्कार करते हुए विचरण करूँगा ।

पुस्तकों की सूची एवं संक्षेप

१–	अंगुत्तर निकाय	...	अं० नि०
२–	दीघनिकाय	...	दी० नि०
३–	धम्मपद	...	ध० प०
४–	इतिवुत्तक	...	इति०
५–	जातक	...	जा०
६–	जातक निदानकथा	...	जा० नि०
७–	मज्झिम निकाय	...	म० नि०
८–	मिलिन्द पञ्ह	...	मिलि० प०
९–	संयुक्त निकाय	...	सं० नि०
१०–	सुत्त निपात	...	सु० नि०
११–	थेर गाथा	...	थेर० गा०
१२–	थेरी गाथा	...	थेरी० गा०
१३–	उदान	...	उ०

धम्मपद, जातक, जातकनिदान, सुत्तनिपात, थेरगाथा तथा थेरीगाथा के संदर्भ गाथा संख्या में दिया गया है और अन्य ग्रन्थों की संदर्भ पालि टेक्स् सोसाइटी के अनुसार है।

संदर्भ

१.	सु० नि०	५४४
२.	स० नि०	I,५०
३.	सु० नि०	१०६३
४.	सु० नि०	१०६५
५.	सु० नि०	१०३८
६.	सु० नि०	१०५३
७.	सु० नि०	९२
८.	इति०	९१
९.	सं० नि०	I४
१०.	उ०	६
११.	स० नि०	I,३३
१२.	स० नि०	I,३३
१३.	सं० नि०	I,३३
१४.	मिलि० प०	३३५
१५.	मिलि० प०	३३५
१६.	अं० नि०	II,१०
१७.	थेरी० गा०	३४७
१८.	थेरी गा०	३५७
१९.	सं० नि०	११७
२०.	अं० नि०	IV ,९६
२१.	सं० नि०	I१७
२२.	इति०	८
२३.	उ०	६९
२४.	इति०	९३
२५.	इति०	९३
२६.	इति०	६६
२७.	इति०	६६
२८.	इति०	६६
२९.	इति०	६६
३०.	इति०	६६
३१.	जा० नि०	१२८
३२.	जा० नि०	१२८
३३.	अं० नि०	II,३२
३४.	स० नि०	१,३२
३५.	सं० नि०	I,३२
३६.	थेर० गा०	६०८
३७.	अं० नि०	III,२०५
३८.	अं० नि०	III,२०६
३९.	थेर० गा०	६१२
४०.	थेर० गा०	६१४
४१.	सु० नि०	१३६
४२.	थेर० गा०	१००१
४३.	इति०	१६
४४.	सं० नि०	१,३७
४५.	सु० नि०	१७४
४६.	सु० नि०	६५७
४७.	सु० नि०	४५१
४८.	सु० नि०	४५२
४९.	सं० नि०	I,१६२
५०.	सं० नि०	I,१६३
५१.	सु० नि०	७२२
५२.	अं० नि०	IV, १९६
५३.	अं० नि०	IV, १९६
५४.	अं० नि०	II,५१
५५.	सु० नि०	४५४
५६.	थेर० गा०	४९९
५७.	जा०	४
५८.	जा०	३४१
५९.	दी० नि०	III, १८८
६०.	दी० नि०	III, २८८

६१.	अं० नि०	IV, २७१
६२.	अं० नि०	IV, २७१
६३.	अं० नि०	IV, ६
६४.	अं० नि०	IV, ६
६५.	सु० नि०	१८७
६६.	सु० नि०	९४
६७.	सं० नि०	I, १७
६८.	इति०	६८
६९.	इति०	६८
७०.	इति०	६८
७१.	स० नि०	I, ३७
७२.	दी० नि०	III, १८८
७३.	दी० नि०	III, १८८
७४.	इति०	१०
७५.	थेर० गा०	१०३५
७६.	थेर० गा०	१४१
७७.	थेर० गा०	१०२७
७८.	अं० नि०	II, ८
७९.	अं० नि०	II, ८
८०.	अं० नि०	II, ८
८१.	अं० नि०	II, ८
८२.	थेर० गा०	१०२६
८३.	अं० नि०	II, २१
८४.	इति०	६०
८५.	इति०	६०
८६.	अं० नि०	II, ४
८७.	अं० नि०	II, ८
८८.	थेर० गा०	२७८
८९.	थेर० गा०	३९१
९०.	सं० नि०	I, १२९
९१.	सं० नि०	I, १२९
९२.	थेर० गा०	६६८
९३.	इति०	१११
९४.	इति०	९१
९५.	इति०	१२
९६.	सं० नि०	I, ३९
९७.	ध० प०	१
९८.	ध० प०	३६
९९.	ध० प०	३५
१००.	ध० प०	३३
१०१.	ध० प०	४३
१०२.	अं० नि०	II, २९
१०३.	सु० नि०	१७१
१०४.	थेर गा०	१९२
१०५.	इति०	११७
१०६.	दी० नि०	III,१८५
१०७.	दी० नि०	III,१८५
१०८.	सु० नि०	७१७
१०९.	सु० नि०	७०७
११०.	सु० नि०	७०९
१११.	अं० नि०	V, १६
११२.	सं० नि०	I, १४
११३.	थेर० गा०	५८५
११४.	मिलि० प०	३३७
११५.	थेर० गा०	५४८
११६.	सु० नि०	३३४
११७.	सु० नि०	९६
११८.	अं० नि०	II, १७
११९.	सु० नि०	३३१
१२०.	थेर० गा०	४५१
१२१.	थेर० गा०	२९३
१२२.	थेरी० गा०	१६१
१२३.	सं० नि०	I, ७
१२४.	सु० नि०	१८४
१२५.	थेर० गा०	६३७
१२६.	सं० नि०	I,४८
१२७.	थेर० गा०	४४६
१२८.	सं० नि०	I, १६२
१२९.	सं० नि०	I, १६२
१३०.	इति०	१२०

१३१.	इति०	१२०
१३२.	इति०	१२१
१३३.	थेर० गा०	८१६
१३४.	मिलि० प०	३४२
१३५.	थेर० गा०	१००
१३६.	ध० प०	१३०
१३७.	ध० प०	१६५
१३८.	ध० प०	१५७
१३९.	ध० प०	१५८
१४०.	ध० प०	१५९
१४१.	सु० नि०	१३२
१४२.	ध० प०	५०
१४३.	ध० प०	२५३
१४४.	ध० प०	२५२
१४५.	ध० प०	३७९
१४६.	इति०	८४
१४७.	इति०	८४
१४८.	इति०	२२
१४९.	सं० नि०	I, २०८
१५०.	सं० नि०	I, २०८
१५१.	जा०	३७
१५२.	जा०	३८
१५३.	जेर० गा०	९७९
१५४.	थेर० गा०	३३
१५५.	सं० नि०	IV,११८
१५६.	जा० नि०	१६८
१५७.	जा० नि०	१६९
१५८.	सु० नि०	७०५
१५९.	अं० नि०	II, ७२
१६०.	अं० नि०	II, ७२
१६१.	अं० नि०	II, ७२
१६२.	थेर० गा०	६४८
१६३.	थेर० गा०	६४९
१६४.	मिलि० प०	३९४
१६५.	इति०	२१
१६६.	थेर० गा०	२२५
१६७.	सं० नि०	I, १६१
१६८.	सं० नि	IV,१२७
१६९.	सं० नि०	I, २१२
१७०.	उ०	११
१७१.	सं० नि०	I, २१२
१७२.	थेर० गा०	११
१७३.	उ०	१०
१७४.	उ०	१०
१७५.	थेर० गा०	२२७
१७६.	सु० नि०	७०२
१७७.	सु० नि०	७२०
१७८.	सु० नि०	७२१
१७९.	इति०	५६
१८०.	थेर० गा०	२
१८१.	थेर० गा०	५०१
१८२.	थेर० गा०	६५०
१८३.	थेर० गा०	५८२
१८४.	उ०	४२
१८५.	थेर० गा०	४९
१८६.	थेर० गा०	३९८
१८७.	इति०	४०
१८८.	इति०	४०
१८९.	सं० नि०	I, ५
१९०.	म० नि०	III, १३१
१९१.	म० नि०	III, १३१
१९२.	थेरी० गा०	१७७
१९३.	सं० नि०	III, १४२
१९४.	इति०	१२२
१९५.	इति०	१२२
१९६.	थेर गा०	७००
१९७.	थेर० गा०	७०१
१९८.	थेर० गा०	१०१३
१९९.	सं० नि०	I, १४९
२००.	सं० नि०	I, २१०
२०१.	सं० नि०	I, १११
२०२.	जा० नि०	१२२
२०३.	अं० नि०	III, ३३१
२०४.	सु० नि०	१०६२
२०५.	स० नि०	I, ५६
२०६.	थेर गा०	१२७७
२०७.	थेर० गा०	३३४
२०८.	थेरी० गा०	२५०
२०९.	थेरी० गा०	३६१
२१०.	सु० नि०	१९२

"Wherever the Buddha's teachings have flourished,
either in cities or countrysides,
people would gain inconceivable benefits.
The land and pepole would be enveloped in peace.
The sun and moon will shine clear and bright.
Wind and rain would appear accordingly,
and there will be no disasters.
Nations would be prosperous
and there would be no use for soldiers or weapons.
People would abide by morality and accord with laws.
They would be courteous and humble,
and everyone would be content without injustices.
There would be no thefts or violence.
The strong would not dominate the weak
and everyone would get their fair share."

**※ THE BUDDHA SPEAKS OF
THE INFINITE LIFE SUTRA OF
ADORNMENT, PURITY, EQUALITY
AND ENLIGHTENMENT OF
THE MAHAYANA SCHOOL ※**

GREAT VOW

BODHISATTVA EARTH-TREASURY
(BODHISATTVA KSITIGARBHA)

" Unless Hells become empty,
I vow not to attain Buddhahood;
Till all have achieved the Ultimate Liberation,
I shall then consider my Enlightenment full !"

Bodhisattva Earth-Treasury is
entrusted as the Caretaker of the World until
Buddha Maitreya reincarnates on Earth
in 5.7 billion years.

Reciting the Holy Name:

NAMO BODHISATTVA EARTH-TREASURY

Karma-erasing Mantra:

OM BA LA MO LING TO NING SVAHA

Taking Refuge with Bodhichitta

I go for refuge, until I am enlightened,
to the Buddha, the Dharma and the Sangha.
Through the merit I create by practicing giving and the other perfections,
may I quickly attain the state of Buddhahood for the benefit of all sentient beings.

The Prayers of the Bodhisattva

With the wish to free all beings,
I will always go for refuge
to the Buddha, Dharma and Sangha
till I reach full enlightenment.
Enthused by the compassion and wisdom,
Today, in Buddha's presence,
I generate the Mind of Enlightenment,
for the sake of all sentient beings.
For as long as space remains,
and as long as sentient being remain,
until then, may I too remain
to dispel the sufferings of all beings.

With bad advisors forever left behind,
From paths of evil he departs for eternity,
Soon to see the Buddha of Limitless Light
And perfect Samantabhadra's Supreme Vows.

The supreme and endless blessings
of Samantabhadra's deeds,
I now universally transfer.
May every living being, drowning and adrift,
Soon return to the Pure Land of Limitless Light!

*** The Vows of Samantabhadra ***

I vow that when my life approaches its end,
All obstructions will be swept away;
I will see Amitabha Buddha,
And be born in His Western Pure Land of
Ultimate Bliss and Peace.

When reborn in the Western Pure Land,
I will perfect and completely fulfill
Without exception these Great Vows,
To delight and benefit all beings.

*** The Vows of Samantabhadra Avatamsaka Sutra ***

DEDICATION OF MERIT

May the merit and virtue
accrued from this work
adorn Amitabha Buddha's Pure Land,
repay the four great kindnesses above,
and relieve the suffering of
those on the three paths below.

May those who see or hear of these efforts
generate Bodhi-mind,
spend their lives devoted to the Buddha Dharma,
and finally be reborn together in
the Land of Ultimate Bliss.
Homage to Amita Buddha!

NAMO AMITABHA
南無阿彌陀佛

【印度 HINDI 文及巴利文:GEMSTONES OF THE GOOD DHAMMA,佛法的瑰寶】

財團法人佛陀教育基金會　印贈
台北市杭州南路一段五十五號十一樓

Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
Mobile Web: m.budaedu.org

Printed in Taiwan
3,000 copies; April 2015
IN041-13100